मीरा का भगवान साक्षात् मनुष्य रूप है। लौकिक जीवन में वह 'गिरधर' जैसे मनुष्य को ही पाना चाहती है। यह उसकी कल्पना का पुरुष है। पहले वह कल्पना पुरुष से अपने मन की बातें करती है बाद में अपनी सखियों से कहती है। मसलन 'नरसी जी का माहरा' में वह मिथुला नामक सखी को संपूर्ण कहानी कहती है। समूह गीतों में, 'गरबा गीतों' में निजी मन की बातें कही हैं। इन गीतों में मन की अशांति और अतृप्ति की सघन भावभंगिमाओं को अभिव्यक्त किया।

मीरा के लिए प्रेम न तो पागलपन है और न बीमारी है और न अस्पृश्य ही है। प्रेम को वह सहज एवं जीवंत मानवीय अनुभूति के रूप में रूपायित करती है। स्त्री के कर्म-क्षेत्र के रूप में 'घर', 'पति', 'सास', 'ससुर', 'पिता' इत्यादि की सेवा को एकदम अस्वीकार करती है। गृह, गृहिणी जीवन और पितृसत्ताक व्यवस्था का विरोध उनके माधुर्यपूर्ण काव्य का केंद्रीय लक्ष्य है। मीरा ऐसी स्त्री है जिसने अपना पूरा रूपांतरण कर लिया है।

पितृसत्ताक व्यवस्था में स्त्री के साथ किस तरह के जुल्म होते हैं और परिवारीजनों का रवैया किस कदर अमानवीय होता है उसे सामाजिक तौर पर अभिव्यक्त करने वाली मीरा पहली भारतीय लेखिका हैं। स्त्री का दु:ख, उत्पीड़न एवं दमन हमेशा निजी रहा है। स्त्रियाँ इसे छिपाती रही हैं। इससे पुंसवादी वर्चस्व को लाभ होता है। मीरा ने जो कुछ व्यक्तिगत था उसे सामाजिक कर दिया। निजी के सामाजिक करने के पीछे आधुनिकता का नजरिया झलकता है। निजी को सामाजिक रूप में व्यक्त करने का भावबोध आधुनिक तत्त्व है, यह सामंती तत्त्व नहीं है और न ही मध्यकालीन तत्त्व ही है।

मीराबाई ने अपनी कविता में निजी को सामाजिक करने के लिए 'मिथक' एवं 'कहानी' का मिला-जुला प्रयोग किया है। 'मिथक' उच्च संस्कृति का तत्त्व है और 'कहानी कला' जनसाधारण की संस्कृति का अंग है। इन दोनों तत्त्वों का बड़े ही कौशल से मिश्रण तैयार करके जो कविता निर्मित की है उसमें परंपरा और अनुभव भी शामिल हैं। ये सभी तत्त्व मीरा की कविता को वाचिक परंपरा के ज्यादा करीब ले जाते हैं। इस तरह के ढाँचे में जो कविता निर्मित होती है उसमें कोई-न-कोई उपयोगी बात जरूर होती है।

मीरा की कविता में आत्मकथा के अंश भी हैं। कहानी है। साथ ही सहज एवं ठोस जीवनानुभवों की तीव्रतम अभिव्यक्ति भी है। अपनी पूर्ववर्ती लेखिकाओं की तरह 'सही' या 'गलत' बताने का दायित्व पाठक पर छोड़ने की बजाय वह स्वयं तय करती है कि 'सही' क्या है और 'गलत' क्या है? कृष्ण की कहानी को नई अंतर्वस्तु देकर कहानी का विस्तार करती है। यही वजह है कि उनके पदों को सबसे ज्यादा लोकप्रियता हासिल हुई। उल्लेखनीय है, परंपरागत कहानी को जब तक नए प्रश्नों और अंतर्वस्तु से नहीं भरा जाता तब तक वह सीमाबद्ध रहती है। बहुत कम लोगों तक संप्रेषित होती है। मीरा की कविता में मौजूद नई अंतर्वस्तु का नई शहरी अर्थव्यवस्था से गहरा संबंध है। व्यापार की नई शैली के उदय ने व्यापारिक विनिमय के नए रूपों को जन्म दिया। इसके

कारण पुरानी जड़ जीवन-शैली टूटी और उसमें तेजी से परिवर्तन घटित हुए। नए मानवीय परिवर्तनों को मीरा पकड़ने में सफल रही। नए व्यापारिक पूँजीवाद के युग में वंशानुगत गुणों एवं अधिकारों की बजाय बौद्धिक गुणों या निजी गुणों को प्रतिष्ठा का प्रतीक माना जाने लगा। मीरा ने इसे पहचाना और अपनी बौद्धिक श्रेष्ठता को कविता के माध्यम से सिद्ध किया। व्यापारिक पूँजीवाद के प्रभाव के कारण ही धर्मनिरपेक्ष नजरिए का इस दौर में उदय हुआ। कविता में धर्मनिपरेक्ष नजरिए को सबसे पहले अभिव्यक्ति मिली। अब धर्म सिर्फ सवर्णों की बपौती नहीं रह गया अपितु आम जनता के सभी वर्गों की संपत्ति था। धर्म का संस्कारों, त्योहारों एवं अंधविश्वासों के आधार पर विस्तार हुआ। धर्मनिरपेक्ष नजरिए के विकास की प्रक्रिया का नगरीय सभ्यता के विकास से गहरा संबंध है। सामाजिक संरचनाओं में भी बदलाव आया। नए वर्गों एवं पेशेवर समूहों का उदय हुआ। परंपरागत विश्वासों एवं पूर्वाग्रहों में कमी आई। यही वह पृष्ठभूमि है जिसमें भक्ति-आंदोलन पैदा हुआ। यह सांस्कृतिक जन-जागरण का आंदोलन था। जातिप्रथा, रूढ़िवाद, कट्टरवाद का इसने विरोध किया, साथ ही राष्ट्रीयताओं के उदय को इससे बल मिला। इस आंदोलन की सीमाएँ भी थीं। के० दामोदरन ने लिखा है—"यह सच है कि सामूहिक प्रार्थनाओं, नृत्यों और संकीर्तनों से संतों का व्यक्तित्व जनता की सृजनात्मक क्षमता को प्रेरणा प्रदान कर रहा था। उनके व्यक्तित्व ने जनता में एक नई चेतना जगाई और क्रियाशीलता के लिए विशाल जनसमुदाय में नई स्फूर्ति पैदा की। उसने सामंतवाद के अंतर्गत फैले जातिवाद और धार्मिक अलगाव को भी खत्म किया और सामंतवाद विरोधी संघर्षों में नई जान फूँकी। यह सब सच है। किंतु धर्म के लिए प्रेरणा मूलतः संवेदनात्मक अधिक होती है, तर्क करने या मुक्तिपूर्वक सोचने का अवसर कम मिलता है। अतः धार्मिक भावना न तो सामाजिक संस्थाओं के तर्कसंगत विश्लेषण के लिए सक्षम है, न ही इन समस्याओं का युक्तियुक्त समाधान ढूँढ़ निकालने में वह अधिक सफल होती है।

"भक्ति-आंदोलन ने आम जनता में जागृति तो पैदा की, किंतु वह सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थाओं में मौजूद असंगतियों के वास्तविक कारणों को समझने, मानव दुखों-पीड़ाओं के नूतन समाधान प्रस्तुत करने में सफल नहीं हुआ। यही एक मुख्य कारण है कि इस आंदोलन की चरम परिणति जिसने सामंती उत्पीड़न और पुरोहिती रूढ़िवाद के विरुद्ध जनता को संयुक्त किया था, अंततः घोर संकीर्णतावाद में हुई।"

भक्ति-आंदोलन के प्रसंग में मीराबाई पर विचार करें तो यह भी ध्यान रखें कि इस दौर में नए वर्गों के रूप में कारीगर, दस्तकार, व्यापारी वर्ग का उदय हुआ। ये वर्ग उस जमाने में असंगठित थे साथ ही महिलाएँ भी असंगठित थीं। इसी प्रसंग में मुक्तिबोध का मत द्रष्टव्य है। मुक्तिबोध की धारणा थी कि "किसी भी साहित्य का ठीक-ठीक विश्लेषण तब तक नहीं हो सकता जब तक हम उस युग की मूल गतिमान सामाजिक शक्तियों से बनने वाले सांस्कृतिक इतिहास को ठीक-ठीक न जान लें।"

स्त्री-साहित्य में मीरा अन्यतम हैं। वह पुरुष लेखकों से भिन्न नजरिया रखती हैं।

वह पितृसत्ताक व्यवस्था को चुनौती देती हैं। स्त्री की दमित इच्छाओं, आकांक्षाओं एवं अनुभूतियों को अभिव्यक्त करती हैं। जबकि पुरुष लेखकों ने इस पहलू की उपेक्षा की है। साथ ही जिस तरह के स्त्री स्वरूप को रूपायित किया है उसमें सद्गृहिणी, माता, बहन की छवियाँ ज्यादा हैं। स्त्री निंदा पर तुलसीदास ने जितने पद लिखे हैं उतने पद उन्होंने स्त्री की पीड़ा की अभिव्यक्ति पर नहीं लिखे। इसके बाद के रीतिकाल में नख-शिख वर्णन पर ही पुरुष लेखकों ने सबसे ज्यादा रुचि दिखाई है। इन रचनाओं में रसशास्त्र, नायक-नायिका भेद का रूपायन ज्यादा मिलता है। इस तरह के रूपायन से पितृसत्ता मजबूत हुई।

मीरा के युग में लेखिकाएँ पहले से तयशुदा धारणाओं में ही सोचती थीं। उन्हीं अवधारणाओं में स्वयं को व्यक्त करती थीं जिन्हें मर्दों ने बनाया था। रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' ने इस दौर के स्त्री काव्य की स्थिति का मूल्यांकन करते हुए लिखा कि "भक्ति काव्य की सरिता दो मुख्य धाराओं में प्रवाहित हुई है। प्रथम है कृष्ण-भक्ति धारा और दूसरी राम-भक्ति धारा। प्रथम धारा की काव्य-लहरी में संगीतात्मक-कलरव, भक्ति-भाव गांभीर्य, प्रेम-पीयूष रस और काव्य-कंजावली का सुखद सौरभपूर्ण विनोदकारी विलास का पावन प्रकाश था। द्वितीय धारा में जीवन-घटनाओं की जटिल भँवरें तो विशेष थीं किंतु प्रथम धारा की सम्मोहक सामग्री उतने अच्छे रूप में उपस्थित न थी। इसलिए भावुक कवियों, सरल हृदयों तथा मृदुल-मानस-शीला महिलाओं ने प्रथम धारा को ही विशेष अपनाया है। निष्कर्ष यह है कि हमारी देवियों ने विशेष रूप से कृष्ण-काल की ही रुचिर रचना की है।''''कृष्ण-काल का संगीत-तत्त्व भी स्त्रियों के लिए विशेष आकर्षण का कारण ठहरता है। कृष्ण काव्य में कृष्ण की बाललीलाओं (जिनमें वात्सल्य-भाव की ही प्रधानता रहती है) तथा उनके यौवन-काल की प्रेम-लीलाओं का (जिनमें श्रृंगारात्मक रीतिभाव के माधुर्य रस स्नेह के सौरभ और मंजुल भावों के मार्दव का प्राचुर्य रहता है) का ही वर्णन किया जाता है और इसके ये दोनों तत्त्व स्त्री-हृदय के मुख्य तत्त्व हैं। यह बात राम-काव्य में नहीं। इसीलिए स्त्रियों ने राम-काव्य की अपेक्षा कृष्ण-काव्य को ही अपने लिए उपयुक्त मानकर ग्रहण किया है। हाँ, कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी हैं कि जिन्होंने राम-काव्य के पवित्र आदर्श को देखते हुए अपने लिए उसे अच्छा समझा और अपनाया है किंतु इसकी संख्या उँगलियों पर ही गिनी जा सकती है। राम-काव्यकार पुरुषों की भी संख्या कृष्ण-काव्यकारों की अपेक्षा बहुत ही अधिक संकीर्ण है। क्योंकि राम-काव्य सरस हृदयों के प्रायः अनुपयुक्त ही ठहरता है।"

रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' ने यह भी लिखा है कि स्त्री-साहित्य जो भी हमारे सामने इस समय उपस्थित है उसी शैली से हमें रचा हुआ मिलता है जिस शैली से हमारा पुरुष-साहित्य रचा हुआ प्राप्त होता है। स्त्रियों ने प्रायः पुरुष कवियों की ही सभी प्रधान शैलियों और विषयों का अनुकरण किया है और उन्हीं के समान साधारण और व्यापक साहित्य की रचना की है।''''कला काल में स्त्रियाँ अवश्यमेव शिक्षा के अभाव से पुरुषों के साथ साहित्य-रचना की दौड़ में नहीं दौड़ सकीं और रीति-ग्रंथों की रचनाएँ नहीं कर

सकीं किंतु आधुनिक काल में आकर फिर वे पुरुषों के साथ पूर्ववत् चलने लगी हैं।

मीरा काव्य में पुरुष मार्ग या शैलियों के माध्यम से प्रवेश जरूर करती हैं किंतु वह वहीं तक सीमित नहीं रहतीं, वह अपनी पहचान या अस्मिता को खोजने की कोशिश करती हैं। जबकि पुरुषों में अपनी अस्मिता की खोज की कोई छटपटाहट नहीं मिलती। स्त्री की अस्मिता के निर्माण की छटपटाहट मीरा को अन्य कवियों से एकदम भिन्न बनाती है। दूसरी भिन्नता यह है कि मीरा ने अपने निजी पारिवारिक जीवन के अंतर्विरोधों को सामाजिक तौर पर उद्घाटित किया, व्यक्तिगत को सामाजिक बनाया। निजी को सामाजिक रूप में व्यक्त करना स्त्री की आधुनिक दृष्टि है। यह आधुनिक मूल्य बोध है। मीरा अपनी लड़ाई में पुरुष संदर्भ की एकदम उपेक्षा करती है। पुरुषों का सहारा नहीं लेती।

मीरा काव्य में वैविध्य का आस्वाद लेना हो तो पद्मावती 'शबनम' द्वारा संगृहीत 'मीरा बृहद् पद संग्रह' (1942) को पढ़ा जाना चाहिए। मीरा को कैसी पाबंदियों, किस तरह की सलाह और दबावों के बीच काव्य-सृजन करना पड़ा, उसका आभास इस संकलन में मिलता है। 'मीरा' और 'ऊदां' के बीच का संवाद बेहद दिलचस्प है। 'ऊदां' ने मीरा को सलाह दी कि संतों में उठना-बैठना बंद कर दो। इससे चारों ओर निंदा हो रही है। कुल की प्रतिष्ठा नष्ट हो रही है। तुम तो बड़े घराने की बहू को, यह तुमको शोभा नहीं देता। मीरा ने इस सलाह को ठुकरा दिया और कहा--

राणा ने समझाओ जाओ, मैं तो बात न मानी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, संता हाथ बिकानी॥

मीरा ने राणा के साथ विवाह का भी विरोध किया था साथ ही गौर-पूजा का भी विरोध किया। स्त्री की अवस्था यह रही है कि उसे किसी-न-किसी की होकर रहना होता है। चाहे वह माँ होकर रहे या बहन या पत्नी या दासी। मीरा इन सब अवस्थाओं को ठुकराती है। उसने लिखा, 'बरजी मैं काहू की नाहि रहूँ।' अपनी विद्रोही चेतना के कारण वह श्वसुर का घर त्यागती है, पिता का परिवार भी छोड़ देती है। साथ ही 'घूँघट' भी छोड़ देती है। मीरा का घूँघट छोड़ना वैवाहिक जीवन के नियंत्रण की अस्वीकृति है। मीरा के शब्दों में :

"नयन लागे तब घूंघट कैसो, लोक लाज तिनका ज्यूँ तोड्यो।" या "साध संग मोहिं प्यारा लागै, लाज गई घूँघट की।" 'साधु संगति' में शामिल होने का अर्थ है घूँघट की लाज का जाना और सामंती पर्दा प्रथा से मुक्ति। इसका एक अन्य अर्थ यह भी है कि जब किसी और से प्यार हो जाता है तब पर्दादारी नहीं होती। उस काल में स्त्री की निजी और सार्वजनिक परिवेश की सीमाओं को घूँघट तय करता था। 'घूँघट' को सामंती इज्जत का प्रतीक माना जाता था। सामंती 'शर्म' की परिभाषा इससे तय होती थी। मीरा ने घूँघट का त्याग करके एक ही झटके में निजी एवं सार्वजनिक परिवेश के विभाजन को अस्वीकार कर दिया। साथ ही सामंती प्रतिष्ठा को स्त्री की

प्रतिष्ठा का पर्याय मानने से इनकार किया।

मीरा ने अपनी कविता के आराध्य 'गिरधर नागर' पर बार-बार जोर दिया है। चूँकि पुरुष की अवधारणा में वह अपनी मुक्ति खोज रही है अत: अंतर्विरोध की शिकार बनती है। 'गिरधर' बली हैं और मीरा अबला है। अबला-बली के रिश्ते में भावों को अभिव्यक्त करने के कारण पुंसवादी मूल्यव्यवस्था बनी रहती है। वह कहती है, ''मैं अबला बल नाहिं गुसाईं, राखो अब के लाज।''

मीरा की विद्रोही चेतना का एक अन्य प्रतीक है उसका सती होने से इनकार करना। राजवंश में पति के मरने पर सती होना पड़ता था, मीरा ने इसके खिलाफ कहा, ''सती न होस्यां गिरधर गास्यां, म्हारो मन मोहो घण नामी। जेठ बहू को ना तो राणीजी, हूं सेवक थे स्वामी।''

मीरा की काव्य-शैली एवं प्रतिरोध शैली का वैशिष्ट्य है कि वह पितृसत्ता के बंधनों एवं नियमों को चुनौती देती है। इसके लिए जहाँ एक ओर गिरधर के प्रति वह 'समर्पण' बोध को रूपायित करती है तो दूसरी ओर 'नाचकर', 'घुँघरू बाँधकर', 'पिया के पलंग पर बैठकर', 'हरि के रंग में रँग कर', 'लोक लाज त्यागकर' वस्तुत: स्त्री के मन, स्वतंत्रता, इच्छाओं की उन्मुक्त भाव से अभिव्यक्ति करके इनकी अधिस्वामिनी होने की घोषणा करती है। मीरा पहली लेखिका है जो 'व्यक्ति' के लिए 'जन' पदबंध का प्रयोग करती है। 'जन' का 'दासी' के पर्यायवाची शब्द के रूप में इस्तेमाल करती है।

सामंती ढाँचे में 'परिवार' जैसी संस्था को ठुकराना, 'शादी' के प्रति अस्वीकार बोध, निजी मन की अनुभूतियों को सर्वोपरि महत्त्व देना वस्तुत: स्त्री की स्वतंत्र अस्मिता को निर्मित करने की काव्यात्मक कोशिश है।

मीरा का पितृसत्ता विरोध नैतिक धरातल से शुरू होता है और वहीं खत्म होता है। समूचे भक्तिकाव्य की कविता में विरोध का आधार नैतिक है। विरोध के नैतिक आधार को सामाजिक-आर्थिक विरोध के साथ जोड़ने में वह असमर्थ रही हैं।

इतिहासकार हरबंश मुखिया ने 'मध्ययुगीन भारत का भक्ति साहित्य : एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य' निबंध में लिखा है, ''किसी समाज में प्रतिरोध का आधार यदि नैतिक रहता है, आर्थिक और सामाजिक जड़ें नहीं पकड़ता, अर्थात यदि प्रतिरोध किसी विकल्प की कल्पना पर आधारित नहीं होता तो उससे उस समाज में थोड़ी-सी लचक तो आ जाती है किंतु कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हो पाता, और अंत में वही संस्थाएँ जो प्रतिरोध का विषय होती हैं, एक बार फिर हावी होने का प्रयत्न करती हैं जिसमें सफलता और असफलता दोनों ही संभव हैं।''

''विकल्प की कल्पना के अभाव के कारण नैतिक प्रतिरोध का स्वरूप समाज की संस्थाओं को स्वीकार करने और उनके आदर्श रूप से चलने की आशा में ही अभिव्यक्त हो पाता है। यही अभिव्यक्ति उसकी सबसे बड़ी सीमा की भी द्योतक होती है। क्योंकि प्रतिरोध का चिंतन भी उन्हीं इकाइयों में बँध जाता है जोकि उनके प्रतिरोध का विषय होती है।''